ISSN: 2456-947X, Vol. II, Issue. II, March-2019

अनघ

(An International Journal of Hindi Language, Literature and Culture)

Journal Homepage: http://cphfs.in/research.php

मध्यकाल में भक्ति संवेदना का स्वरूप

डॉ. लोकेश कुमार गुप्ता

सहायक प्रोफेसर

माता सुंदरी महिला महाविद्यालय

नई दिल्ली -०२

E-mail: lokeshjnu@gmail.com

शोधसार: मध्यकालीन शास्त्र और संस्कृति के आचार्यों और संवेदकों के भक्ति विषयक चिंतन को केन्द्र में रखा गया है। शास्त्र और लोक, द्वैत और अद्वैतवाद के द्वंद्व को परिलक्षित किया गया। भिन्न-भिन्न दर्शन और मतों के आग्रह के स्पष्टीकरण है। मध्यकालीन संप्रदाय में भक्ति के स्वरूप को विश्लेषित किया गया है। प्रेममार्ग, निर्गुण की परंपरा तथा स्त्री संदर्भित मान्यताओं को स्पष्ट किया गया है।

I. प्रस्तावना

मध्यकाल में भक्ति संवेदना के स्वरूप को व्यक्त करने हेतु जहाँ हम भक्ति के दार्शनिक स्वप्रकारों के विचारों से संवाद बनाते हैं वहीं भक्ति संवेदकों की सृजना के माध्यम से भी। भक्ति के स्वरूप में विभिन्न मानसिकताओं ने अपने-अपने आत्मबोध के द्वारा सतत् परिवर्तन.परिवर्धन के प्रयास किये हैं। तत्कालीन मानसिकता के इन्हीं दोनों पक्षों-सिद्धांत और सृजन-से अपेक्षित संवाद बनाते हुए भक्ति के स्वरूप को परिलक्षित करने का प्रयास करेंगे।

II. शंकराचार्य का अद्वैतवाद

प्रतिभाशाली तथा असाधारण दार्शनिक शंकराचार्य ने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखकर अद्वैतवाद सिद्धांत की नींव डाली। शंकराचार्य ने अपने चिंतन से दर्शन को जो ऊँचाई और धर्म को जो दिशा प्रदान की वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। शंकर ने अपने समय में पनप रही आलवारों की भक्ति के थपेड़ों एवं दार्शनिक मतों-लोकायत, सांख्य, बौद्ध, वैशेषिक-आदि के द्वारा वैदिक धर्म को शनैःशनैः काल-कवलित होते पाया। शंकर ने इन दार्शनिक मतों एवं आलवार भक्ति का खंडन कर वेदांतों के माध्यम् से वैदिक धर्म की पुनप्र्तिष्ठा की। शंकर का प्रसिद्ध सिद्धांत है कि ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या अथवा माया। प्रसिद्ध विद्वान के. दामोदरन की सम्मति में शंकर के अनुसार मनुष्य को जीवात्मा और परमात्मा की अभिन्नता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। उसे जीवात्मा को अप्रतिबंधित, निर्गुण ब्रह्म से जो एकमात्र यथार्थ है, मिला देना चाहिए। ज्ञान अथवा यथार्थ का संज्ञान, ब्रह्म से एकाकार होने का साधन है। भक्ति और कर्म केवल मन को शुद्ध करने और साधक को ब्रह्म के निकट तक ले जाने के उपाय मात्र हैं। वे ज्ञान को प्राप्त करने में सहायक हैं। यदि मनुष्य चेतना के उस स्तर पर पहुँचना चाहता है जो सच्चे ज्ञान का स्तर है, तो उसे इन्द्रियों और मस्तिष्क को पूर्णतः नियंत्रित कर लेना चाहिए, सभी सांसारिक आकर्षणों को त्याग देना चाहिए और लौकिक जीवन के भ्रामक स्वरूप को पहचान लेना चाहिए।[i] शंकर का यह सिद्धांत

बौद्ध विज्ञानवादियों के शून्यवाद से मिलता जुलता है। विज्ञानवादी इस घटनापूर्ण जगत को अयथार्थ मानते हैं। उनके मतानुसार सारे अनुभव मानसिक हैं। ज्ञान की वस्तुएँ अपने आपमें कुछ न होकर संज्ञान द्वारा निर्धारित होती हैं। विज्ञानवादियों के इस भाववाद और शंकर के भाववाद में काफ़ी साम्य है। इसीलिए कई विद्वान इन्हें प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं। उनके गुरु के गुरु गौड़पाद बौद्ध थे।[ii] शंकर का अद्वैतवादी मत भक्ति के अनुरूप और अनुकूल नहीं था क्योंकि जब जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद ही नहीं होगा तो कौन किसकी भक्ति करेगा ? जब जीव ही ब्रह्म है तो ब्रह्म ही ब्रह्म की उपासना कैसे करेगा? संभवतः इसीलिए पाँति के बंधनों की शृंखला को विशृंखलित कर, भक्ति की राह सर्वजन सुलभ बनाकर, समाज, संस्कृति, धर्म और अध्यात्म के समक्ष भक्ति संवेदन के एक उदार स्वप्न को प्रस्तुत कर, अपनी उदार मानसिकता का परिचय दिया और भक्ति के निज संवेदन-सृजन को उपासना तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने निज भक्ति स्वप्न को शास्त्रीय अर्गलाओं में आबद्ध कर, भक्ति स्वप्न को दर्शन की गरिमा प्रदान की; लेकिन रामानुज ने भक्ति के शास्त्र को सृजित कर भक्ति के निज मुक्त स्वप्न को शास्त्रीय शृंखलाओं में आबद्ध कर, भक्ति को विशिष्टता प्रदान की। विशिष्ट शृंखलाओं में आबद्ध होने के बाद भक्ति या कोई सिद्धान्त सामान्योन्मुख नहीं